

**THE TIMES OF INDIA***Date: 10-12-21*

## Reform Is In Details

*Farm agitation is ending but policymakers must learn to better design key changes in the status quo*

### TOI Editorials

Farmers picketing Delhi's periphery to oppose the 2020 farm laws package are set to exit after GoI conceded their key demands. But that can't be goodbye reforms. Policymakers need to find ways to change the status quo. And learn from botched attempts like the badly drafted farm laws. One lesson is the importance of attention to detail. In intent and overarching vision, the package of farm laws got it right. But the design of the legal framework limited the potential impact of such a far-reaching reform.

To illustrate, a smooth dispute redressal system is a basic need in deepening the market of any product. A poorly designed dispute settlement method was a weakness in the repealed farm package. In this context, it's important to go back to the reform effort of 1991. Their success did not hinge only on the backing of the political executive. A capable team of bureaucrats, many with domain knowledge, shepherded the reforms right through the decade. Reforming complex economic structures calls for teamwork. While the political executive needs to provide the impetus, implementation will inevitably require credible teams that have bought into the need for change.

GoI has for sure tried to crystallise important changes in the economic structure. But a common thread running through many of them is inadequate attention to detail and follow through. One of the first big changes tried was in the Railways. It's been over six years since a committee under Bibek Debroy submitted a report. It even spelt out the sequencing of changes to unlock the potential of private participation in Railways, which began almost 30 years ago. However, key measures such as cleaning up the accounts and setting up a regulator endowed with operational autonomy are still pending.

Of all reforms initiated by this government, the Insolvency and Bankruptcy Code (IBC) is perhaps the most significant. However, the creation of a bad bank to help commercial banks offload their NPAs raises questions on the efficacy of IBC. Is the relatively slow process – 73% of ongoing resolutions having crossed the extended timeline of 270 days – nudging banks to seek alternatives? Given the importance of an effective IBC to India's fragile financial sector, GoI needs to ensure this reform realises its full potential. An attendant benefit is that it will become easier to convince stakeholders of future reforms when there's success to showcase.

---

*Date: 10-12-21*

## A Better NJAC

*Politicians are right on the collegium. But can their solution rise above politics, that's the question*

### TOI Editorials

Bipartisan support, at least in the Lok Sabha, has again surfaced for a National Judicial Appointments Commission. The commission was supposed to replace the collegium system of judges' appointment. But the law was struck down by a five-judge Supreme Court bench with a 4-1 majority in 2015. The current support for NJAC is a good context for all stakeholders to review the debate. The political class rightly critiques the principle of "judges appointing judges", which has virtually no precedent anywhere. Collegium-backers cite instances of executive overreach and suspicious government interest in judicial appointments in the 1970s and 1980s. Those misgivings led to the collegium system, its rules formalised through the Second and Third Judges Cases in the 1990s. But the collegium has attracted credible suspicions of nepotism, it also displays manifest opacity, and on occasion, ignores obviously meritorious candidates.

On paper, the six-member NJAC – the Chief Justice of India as chairperson, two seniormost SC judges, Union law minister, and two eminent citizens, the last two nominated by a panel comprising the Prime Minister, CJI and leader of opposition – was to be a transparent constitutional body. But thanks to SC swinging the axe, we never got a chance to observe this experiment. But now that there's some political momentum behind the idea, let's lay out what a good NJAC should be.

First, the rule in the earlier NJAC Act that any two commission members can veto a candidate raises suspicion this is a backdoor attempt to give GoI primacy. This rule should go. Then, the choice of two civil society members of NJAC must pass the smell test. Politics is polarised. So, both the PM and the LoP, members of the panel choosing these two commission members, must rise above their politics – a tall order. The collegium system doesn't work. But the NJAC solution can be better.



## दैनिक भास्कर

*Date: 10-12-21*

## गरीबी-अमीरी की खाई पाटने के लिए सुधारवादी फैसले लेने होंगे

संपादकीय

ताजा विश्व असमानता रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगातार बढ़ती गरीब-अमीर की खाई एक बार फिर और चौड़ी हो गई है। दरअसल इसके पीछे आर्थिक नीतियां हैं जिनमें समाज के एक तबके को ही विकास का लाभ मिल पा रहा है। समाजशास्त्री मानते हैं कि यह सामाजिक अशांति को जन्म दे सकता है। इस गलत आर्थिक नीति का कुपरिणाम एक अन्य तरीके से भी देख सकते हैं। देश में पिछले पांच वर्षों में यानी मई-अगस्त 2016 से मई-अगस्त 2021 तक रोजगार की आयु वाले लोगों की आबादी करीब 12 करोड़ बढ़ी, लेकिन इसी काल में कुल रोजगार जिन्हें मिला, उनकी संख्या 1.40 करोड़ घट गई। इसी काल में कोरोना की दो लहरों ने अर्थ-व्यवस्था को अमिट चोट पहुंचाई थी। दरअसल इस हकीकत को समझने के लिए सरकार के ही तमाम आंकड़ों को देखना होगा, क्योंकि युवाओं का एक बड़ा तबका नौकरी या रोजगार दफ्तर में इसलिए भी अप्लाई नहीं करता क्योंकि वह मानता है कि नौकरी नहीं मिलने वाली है। लिहाजा वह खेती में या अक्सर असंगठित क्षेत्र में जिंदगी की जद्दोजहद में लग जाता है। नोटबंदी की घोषणा के बाद संगठित ही नहीं असंगठित क्षेत्र अस्थायी दुकान लगाने वाले लाखों लोगों का रोजगार प्रभावित हुआ जबकि कोरोना की दोनों लहरों और उसके तहत लाए गए प्रतिबंधों ने माइक्रो, लघु और मध्यम स्तर के उद्योगों को बुरी तरह क्षतिग्रस्त किया। चूंकि भारत का नीचे का एक बड़ा वर्ग ग्रामीण भारत से है और जो बेरोजगारी के खिलाफ संगठित रूप से आवाज उठाने में असमर्थ है लिहाजा वह वापस गांवों में चला जाता है।

राष्ट्रीय  
**सहारा**

*Date:10-12-21*

## जुड़ेंगी नदियां, बढ़ेगा देश

संपादकीय



बाढ़ और सूखे से बेहाल हमारे देश को बड़ी राहत मिलने का रास्ता खुल गया है। देश की पहली महत्वाकांक्षी नदी-जोड़ो परियोजना लंबे इंतजार और उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में 16 साल चले जल बंटवारे के विवाद के सुलझने के बाद अस्तित्व में आने जा रही है। केंद्रीय मंत्रिमंडल ने केन और बेतवा नदी को आपस में जोड़ने संबंधी परियोजना को बुधवार को मंजूरी दे दी है। दोनों राज्यों में बुंदेलखंड इलाकों की जनता को पेयजल, कृषि कार्यों के लिए सिंचाई का जल एवं अन्य लाभ मिलेंगे। पनबिजली 103 मेगावाट और 27 मेगावाट सौर ऊर्जा भी सृजित होगी। परियोजना को पूरा करने के लिए विशेष उद्देश्यीय कंपनी का गठन किया जाएगा,

जिसे केन बेतवा नदी जोड़ो परियोजना प्राधिकार कहा जाएगा। इस परियोजना की अनुमानित लागत 44,605 करोड़ रुपये होगी। इस परियोजना के तहत मप्र में 8.11 लाख हेक्टेयर और उप्र में 2.11 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई होगी। परियोजना से मध्य प्रदेश में छतरपुर, पन्ना, टीकमगढ़, सागर, दमोह, दतिया, विदिशा, शिवपुरी जिलों को पानी मिलेगा, वहीं उप्र के बांदा, महोबा, झांसी और ललितपुर जिलों को राहत मिलेगी। यानी 62 लाख लोगों को पीने का साफ पानी मिलेगा। क्षेत्र में भूजल का रिचार्ज होगा सो अलग। परियोजना के तहत केन नदी से बेतवा नदी में पानी भेजा जाएगा। यह परियोजना नदियों को आपस में जोड़ने की अन्य परियोजनाओं का भी मार्ग प्रशस्त करेगी। इससे पर्यावरण प्रबंधन भी बेहतर होगा। मार्च, 2021 में देश में नदियों को आपस में जोड़ने की पहली प्रमुख केंद्रीय परियोजना को क्रियान्वित करने के लिए केंद्रीय जल शक्ति मंत्री तथा मप्र और उप्र के मुख्यमंत्रियों के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए थे। नदियों को आपस में जोड़ने के विचार की अवधारणा पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की थी। इससे बाढ़ और सूखे की समस्या झेल रहे देश को बड़ी राहत मिलने की उम्मीद है। साथ ही कृषि उपज बढ़ने से किसान खुशहाल होंगे और क्षेत्र में विकास की नई लहर चलेगी। भारत दुनिया को प्रगति का नया मंत्र भी दे सकेगा, लेकिन इस विचार की राह में अड़चनें भी हैं। महाराष्ट्र के गुजरात के साथ पार-तापी-नर्मदा और दमनगंगा-पिंजाल नदी जोड़ो परियोजना से अलग होने की घोषणा इसका उदाहरण है।



Date:10-12-21

## ताकि हर किसान तक पहुंचे लाभ

योगेंद्र के अलघ, ( अर्थशास्त्री व पूर्व केंद्रीय मंत्री )



नए कृषि कानूनों के खिलाफ किसानों का आंदोलन कमोबेश खत्म हो गया है। इससे राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली की सीमाओं पर बैठे किसानों की घर वापसी की राह तो सुनिश्चित हो गई है, मगर सवाल बना हुआ है कि इस आंदोलन से क्या देश भर के किसानों को लाभ पहुंचा? अच्छी बात है कि पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसे इलाकों में अब न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) पर खरीदारी सुनिश्चित की जाएगी। लेकिन उन राज्यों का क्या, जहां एमएसपी तो दूर की कौड़ी है, बाजार तक सही ढंग से काम नहीं कर रहे? बिहार के किसान तो इसी वजह से अब सड़कों पर उतरने लगे हैं।

नीति आयोग के सदस्य रमेश चंद ने एक फ्रेमवर्क तैयार किया था कि कृषि सुधारों को अखिल भारतीय स्तर पर किस तरह से लागू किया जाना चाहिए। चूंकि कोरोना-संक्रमण काल में माल ढुलाई और परिवहन कमोबेश बंद थे, इसलिए कृषि सुधारों की तरफ बढ़ना मुफीद नहीं था। रमेश चंद ने इसीलिए राज्य सरकारों को विश्वास में लेकर धीरे-धीरे सुधार की बात कही थी। रद्द किए गए कानून कृषि सुधारों की ही वकालत कर रहे थे, इसीलिए अब भी उनको लाया जा सकता है। आसन्न विधानसभा चुनावों के मद्देनजर इनको वापस लिया गया है, पर जब चुनाव की प्रक्रिया पूरी हो जाएगी, तो मुमकिन है कि अलग तरीके से इनको फिर से लागू करने के प्रयास हों।

कृषि सुधार बिहार और झारखंड के किसानों के लिए अहम है। आंदोलनरत किसानों ने एमएसपी की कानूनी गारंटी की बात तो की, लेकिन धान और गेहूं को छोड़ दें, तो बाकी फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य मायने नहीं रखता है। कपास, तिलहन जैसी फसलों के लिए तो एमएसपी बेमानी ही है। इसीलिए महामारी के बाद जब आवागमन सुगम हो जाएगा और माल ढुलाई पुरानी रफ्तार पकड़ लेगी, तब एमएसपी की चर्चा शायद ही होगी। एमएसपी की कानूनी गारंटी महज संकेतक रह जाएगी। किसानों को बाजार के साथ-साथ आवागमन की सुविधा मिले, तो वे भला सरकारी मंडियों के भरोसे क्यों रहेंगे? वे अपनी फसलों को बाहर भेज सकेंगे, जहां से उनको अच्छी कीमत मिल सकेगी।

संयुक्त किसान मोर्चा के आंदोलन की सफलता ने अन्य किसानों को भी प्रोत्साहित किया है। देश के कुछ हिस्सों में किसान अपनी आवाज उठाने भी लगे हैं। मगर इसकी वजह सरकार की कार्यप्रणाली है। निस्संदेह, किसान हरेक मुद्दे पर तो सड़क पर नहीं बैठेंगे, लेकिन सरकार अगर जल्दबाजी करेगी और बिना चर्चा-विमर्श के कानून थोपने के प्रयास करेगी, तो उसका पुरजोर विरोध होगा ही। बिहार में ही बहुत से जिले हैं, जहां अच्छी खेती हो रही है। वे देश की कुल धान पैदावार में 20 फीसदी का योगदान दे रहे हैं। भुट्टे (मकई) की उपज भी बिहार में बहुत है। मकई आज उद्योगों की एक बड़ी जरूरत है। चूंकि बिहार उस दौर को देख चुका है, जब वहां के खेत सोना उगला करते थे, इसलिए वहां खेती के बुनियादी ढांचे पर काम करने की जरूरत है।

वहां भूमि सुधार पर आगे बढ़ना चाहिए। आज वहां ज्यादातर किसान बंटाई पर खेती करते हैं। खेत के असली मालिक तो शहरों में रहते हैं। उन किसानों के हित की बात हमें करनी चाहिए। बिचौलिए इन्हीं किसानों से सस्ते दामों में फसल खरीद लेते हैं और ऊंची कीमतों में शहरों में बेचते हैं। इस तरह, उपज का बड़ा फायदा बिचौलिये के खाते में चला जाता है। यहां अगर एमएसपी भी लागू की गई, तो बात नहीं बनेगी। या तो खेत मालिक या बिचौलिए उन लाभों को कूट खाएंगे।

देखा जाए, तो भूमि सुधार पूरे देश में विफल हो गया है। देश के कई हिस्सों में किसानों की हैसियत बस खेतिहर मजदूर की है। झारखंड भी इसका अपवाद नहीं है। यहां वनोपज पर उनकी निर्भरता काफी ज्यादा है, लेकिन वनोपज बढ़ानेको लेकर जो हमारी वन नीति है, उसका भी खूब उल्लंघन किया जाता है। आंकड़े भी यही बताते हैं कि वनों से लकड़ियां गैर-कानूनी तरीके से काटी जा रही हैं। ट्रांसपोर्ट सर्वे में गैर-कानूनी लकड़ियों के वक्त-बेवक्त पकड़े जाने की बात है। हालांकि, ऐसा नहीं है कि वन बढ़ाने को लेकर अपने यहां काम नहीं हुआ है। वन नीति की बदौलत ही उनका क्षेत्रफल अक्षुण्ण बना हुआ है। हां, घने जंगल जरूर कम हुए हैं, लेकिन वृक्षारोपण में बढ़ोतरी से हालात काफी हद तक स्थिर हैं। वहां के किसानों को वनोत्पाद में साझेदारी दी जानी चाहिए। कुछ जगहों पर ऐसा होता है, लेकिन इसे व्यापक तौर पर लागू किए जाने की जरूरत है। मध्य प्रदेश में भी ऐसा किया जाना चाहिए। वनों की अवैध कटाई की भरपाई 'फार्म फॉरेस्ट्री' (व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए पेड़ उगाना) से होनी चाहिए।

कृषि सुधार की दरकार क्यों है, इसका एक बड़ा उदाहरण नर्मदा नदी के तट पर खेती करने वाले किसान हैं। नर्मदा से निकली नहरों को यदि कंप्यूटर कंट्रोल्ड कैनाल सिस्टम से जोड़ दिया जाता, तो वहां के किसान तंबाकू, दाल, तिलहन की खेती कर सकते, जिससे उत्पादन खासा बढ़ जाता। हमारी कोशिश यही थी, लेकिन वह प्रयास परवान नहीं चढ़ सका और इसका पानी बस डांगर (धान) की खेती के काम आ सका। कंप्यूटर कंट्रोल्ड सिस्टम की दिशा में पिछले 20 साल का हासिल बस यही है कि इस बाबत महज टेंडर जारी हुए हैं। नतीजतन, निचले इलाकों के किसानों को तो पानी मिल जाता है, लेकिन बाकी किसान खाली हाथ रहते हैं। अभी 30 फीसदी किसानों को नर्मदा का पानी नहीं मिलता। इसका अर्थ यह है कि तीन में से एक किसान को सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नहीं है। बाढ़ से जो पानी आता है, उसी से वे अपनी सिंचाई संबंधी जरूरतें पूरी करते हैं। और, हम उन पर यह तोहमत लगाते हैं कि वे तिलहन की खेती नहीं करते।

लब्बोलुआब यही है कि चुनावों के बाद हमें फिर से सुधारों की तरफ बढ़ना चाहिए। मगर हां, इस बार बेवजह की सक्रियता नहीं दिखानी चाहिए। किसानों को उनके हित समझाने होंगे। महाराष्ट्र में ही आंदोलन के दौरान किसानों का एक मार्च नासिक से मुंबई आया था। जब वे मुंबई पहुंचे, तो उनको बताया गया कि बच्चों की परीक्षा के कारण उन्हें शहर में नहीं आना चाहिए। वे तुरंत मान गए और परीक्षा तक शहर की सीमा से बाहर रहे। जाहिर है, अगर तरीका सही हो, तो दिक्कत नहीं होगी। और अगर एकाध मुश्किलें खड़ी होती भी हैं, तो उनको किनारे किया जा सकता है।

---